..... पहला - अपनी निजी जातीय या राष्ट्रीय संस्कृति , जिसकी अपनी भिन्न प्रकृति तथा पहचान है । दूसरा - उसका ऐतिहासिक स्वरूप जो अपने ही देश-काल परिवेश से जुड़ा है । तीसरा प्रवृत्ति है , उसकी अविरलता जो किसी देश की मानव जाति की विकास यात्रा का निजी लक्षण है । चौथा तत्व है - उसकी अजेयता और पाँचवा महत्त्वपूर्ण तत्व है - उसका वर्तमान से जुड़े रहना । डॉ. रघुवंश ने उनकी समीक्षा के तीन ही तत्व की चर्चा की है । ऐतिहासिकता , सांस्कृतिक प्रवाह की गतिशील एवं वर्तमान से उसको जोड़ने की सजगता । आ. द्विवेदी जी के समीक्षा सिद्धांत को किसी ने 'परंपरावाद' कहा है और किसी ने उसे ' धारावाहिकता ' के नाम से पुकारा है । कुछ समीक्षकों ने तो उनकी ऐतिहासिक समीक्षा के रूप में ही स्वीकृति दिखाई है । आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी की दो समीक्षात्मक कृतियाँ - सुर -साहित्य तथा कबीर हिंदी साहित्य में उनकी व्यवहारिक समीक्षा के रूप में विशेष चर्चित रही है । उनकी व्यवहारिक समीक्षा के लिए तीन प्रतिमानों की एक सार्थक संगति आगे निरंतर दिखाई पड़ती है । ऐतिहासिक बोध , सांस्कृतिक प्रवाह की गतिशीलता तथा निष्कर्ष को वर्तमान से जोड़ने की सजगता । साहित्य का ऐतिहासिक बोध उसकी अपनी परंपरा से सर्वप्रथम संबद्ध रहें और ' सुर - साहित्य ' के विश्लेषण की बात जब हजारीप्रसाद द्विवेदी करते है तो उसका संबंध राधा - कृष्ण के विकास से जोड़ते हैं ।

डॉ. नामवर सिंह ने ' दूसरी परंपरा की खोज ' में दो परंपराओं का कबीर के संबंध में उल्लेख किया है - पहली परंपरा तो वह है , जो पूरी रुचि के साथ कबीर साहित्य का संकलन करती है - किंतु साहित्यिक सर्जक के रूप में उन्हें मान्यता नहीं देती । अयोध्या सिंह उपाध्याय ' हरिऔध ' , बाबू श्याम सुंदर दास , डॉ. पीताम्बर दत्त बर्थवाल एवं आ. रामचंद्र शुक्ल थे जो कबीर को कवि ही नहीं मानते । दूसरी परंपरा आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी की है - जो उनके व्यक्तित्व के उन भारतीय प्राचीन ऐतिहासिक परिवेश में विवेचन करते है । आ. द्विवेदी ने अपनी इस दूसरी

परंपरा में कबीर व्यक्तित्व का विश्लेषण करते है । धर्म को अफ़ीम कहे जाने संदर्भ में अपना मत व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा था कि - " अफ़ीम वह है जो कमजोर बनाती है । जो धार्मिक आस्था शक्ति देती है उसे अफ़ीम मान लेना स्वयं एक आत्म - छलना है । और अगर अफ़ीम है , जन-जन की अफ़ीम है तो जनता के राजनीतिक और बौद्धिक नेता होने को जो दावा करते है , वे पहले इस अफ़ीम को देखे - समझे । अगर इस अफ़ीम की शब्दावली में ही वे नए अर्थ और न्याय दर्शन करते तो कोटि - कोटि जन का उद्धार सुगमता हो गया होता । " यह सत्य है कि आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भारतीय आध्यात्मिक अस्मिता से जुड़े कबीर साहित्य का विकास पूर्णतः सही दिशा में किया है - किंतु तीसरी परंपरा का संकेत करके ' कबीर ' शीर्षक कृति में वे मौन रह जाते है । इसका विकास तीसरी परंपरा के रूप में हुआ है और इस प्रकार उनकी कृति ' कबीर ' का महत्त्व कबीर जैसे सशक्त तथा प्रतिभा सम्पन्न कवि की सृजनात्मक तथा साधनात्मक परंपरा के अन्वेषण से संबद्ध है - जिसने सांस्कृतिक चिंतन की दृष्टि से सम्पन्न साधकों के विश्लेषण का सही मार्ग प्रशस्त किया है ।